राष्ट्रभाषा, राजभाषा और सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी

देश में अधिक से अधिक व्यक्तियों के द्वारा बोली जाने वाली व्यापक विचार-विनिमय का माध्यम होने के कारण हिन्दी राष्ट्रभाषा का पद ग्रहण करती है। इससे वैचारिक एवं भावात्मक एकता का जन्म होता है। हिन्दी दुनिया की महान् भाषाओं में से एक है। भारत को समझने के लिए हिन्दी का ज्ञान अनिवार्य है। हिन्दी का महत्त्व आज इसलिए और भी बढ़ गया है क्योंकि भारत शिक्षा, उद्योग और तकनीकी हिसाब से दुनिया का अग्रणी देश है। राष्ट्र के एकीकरण के लिए सर्वमान्य भाषा से अधिक बलशाली कोई तत्व नहीं है। हिन्दी ऐसी ही भाषा है जो सरलता और शीघ्रता से सीखी जा सकती है। संस्कृति तब तक गूँगी रहती है जब तक राष्ट्र की अपनी वाणी नहीं होती, राष्ट्रभाषा नहीं होती। महादेवी वर्मा का मानना है कि राजनीतिक पराधीनता की हमारी हथकड़ी-बेड़ी जरूर कटी है, किन्तु अँगरेजी और अँगरेजियत के रूप में हमारे मनोजगत् में जो दासता चिह्न विद्यमान हैं, उन्होंने हमें निष्क्रिय बना दिया है। भाषा परिधान मात्र नहीं, राष्ट्र का व्यक्तित्व है। हमारे बहुभाषी देश के समान ही रूस भी बहुभाषी देश है जिसमें चालीस से अधिक भाषाएँ बोली जाती हैं। किन्तु उनकी राष्ट्रभाषा रूसी है। हमारी संस्कृति के गोमुख से निकली हुई सब भारतीय भाषाएँ हमारी हैं, किन्तु उनमें अपनी व्यापकता, आरम्भ से ही जनविद्रोह और जनसंघर्ष को वाणी देते रहने के कारण एवं जीवन के हर क्षेत्र को सम्हालने में समर्थ होने के कारण हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया गया है। आधुनिक भारत की संस्कृति एक विकसित शतदल के समान है, जिसका एक-एक दल प्रान्तीय भाषा और उसकी साहित्य-संस्कृति है। गुरुदेव टैगोर का मानना है कि किसी एक दल को मिटा देने से उस कमल की शोभा ही नष्ट हो जायेगी। उनकी कामना है कि भारत की सारी प्रान्तीय बोलियाँ, जिनमें सुन्दर साहित्य-रचना हुई है अपने-अपने घर या प्रान्त में रानी बनकर रहे, प्रान्त के जनगण के हार्दिक चिन्तन की प्रकाश-भूमि स्वरूप कविता की भाषा होकर रहे और आधुनिक भाषाओं के हार की मध्यमणि 'हिन्दी' भारत-भारती होकर विराजती रहे।

जब भारत में राष्ट्रीयता का आधुनिक अर्थ प्रचलित नहीं हुआ था, तब भी भारत में क्षेत्रीय भाषाएँ तो थीं, साथ ही भारत में एक राष्ट्रभाषा भी प्रचलित थी। जब कोई विद्वान अपने भावों एवं विचारों को देश के समक्ष व्यक्त करना चाहता था तब वह अपनी

मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग न कर संस्कृत भाषा का प्रयोग किया करता था। संस्कृत राष्ट्रव्यापिनी भाषा थी इसलिए भाषागत भेद रहने के बावजूद भारत की वैचारिक एकता में बाधा नहीं पड़ती थी। अतः 19वीं शताब्दी के सुधारकों के समक्ष यह प्रश्न उठा कि नवीन भारत की राष्ट्रभाषा क्या होनी चाहिए, तब सभी इस निर्णय पर पहुँचे कि नवीन भारत की राष्ट्रभाषा केवल हिन्दी ही हो सकती है। राष्ट्रीयता के आराधक एवं सभी समाज-सुधारक ने जब भी अन्तर्प्रान्तीय सम्पर्क भाषा की आवश्यकता महसूस की तब उन्होंने सदा ही अनुभव किया कि अन्तर्प्रान्तीय सम्पर्क भाषा कोई भी भारतीय भाषा हो सकती है, और प्रादेशिक पूर्व ग्रहों से ऊपर उठकर वे इसी निर्णय पर पहुँचते रहे कि वह भारतीय भाषा हिन्दी ही हो सकती है। राजा राम मोहन राय ने 1826 में अपना साप्ताहिक पत्र 'बंगदूत' प्रकाशित किया। इसका प्रकाशन हिन्दी, अँगरेजी, बंगला, फारसी भाषाओं में हुआ। इस पत्रिका में श्री राय स्वयं हिन्दी में लेख लिखा करते थे, और दूसरों से भी हिन्दी में लेख लिखने का अनुरोध करते थे। सभी ने यह महसूस किया कि जनता में अपनी पैठ रखने के लिए और उसे आन्दोलित करने के लिए अँगरेज़ी का कोई स्थान नहीं है, ऐसा अपनी भाषाओं के द्वारा किया जा सकता है। रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द आदि सभी हिन्दी में अपना व्याख्यान बखूबी दिया करते थे। ब्रह्मसमाज के प्रमुख नेता श्री केशव चन्द्र सेन का लेख 1875 के 'सुलभ समाचार' में प्रकाशित हुआ जिसमें उन्होंने यह स्पष्ट किया–"अभी भारत में कितनी ही भाषाएँ प्रचलित हैं, उनमें से हिन्दी भाषा ही सर्वत्र प्रचलित है। इसी हिन्दी को भारतवर्ष की एकमात्र भाषा स्वीकार कर लिया जाय तो सहज ही में यह एकता स्थापित हो सकती है।" बंकिमचन्द्र ने यह भविष्यवाणी की थी कि हिन्दी एक दिन भारत की राष्ट्रभाषा होकर रहेगी, क्योंकि हिन्दी भाषा की सहायता से भारत के विभिन्न प्रदेशों में जो ऐक्य-वेधन स्थापित हो सकेगा, वही भारतबन्धु कहलाने के योग्य है। 'मुम्बई के फ्रीचर्च कॉलेज' के प्राध्यापक श्री पेठे की 'राष्ट्रभाषा' पुस्तक 1864 में मराठी में प्रकाशित हुई थी, जिसमें स्पष्ट शब्दों में उन्होंने यह स्वीकार किया कि भारत के लिए एक भाषा आवश्यक है और वह हिन्दी है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि उन महापुरुषों ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का प्रस्ताव किया, जिनकी मातृभाषा हिन्दी न होकर बंगला, गुजराती, मराठी या कोई और भाषा थी।

मुगल शासनकाल में फारसी, अरबी, उर्दू के प्रयोग के कारण एक भाषा का एक रूप विकसित हुआ, जो हिन्दुस्तानी कहलाई। बाजार, हिसाब-किताब, राज-कारोबार-आदि सर्वत्र इसका प्रचलन था। दक्षिण में हैदराबाद मुसलमान-शासन का एक केन्द्र था, अतः उस केन्द्र की आसपास की भाषाएँ जैसे तेलुगु, कन्नड़, मराठी भाषी जनता भाषा के इस रूप से परिचित हो गयी। वहाँ एक और रूप विकसित हुआ, जिसे दक्खिनी कहा गया। यह खड़ी बोली से मिलती-जुलती है। राजनीतिक कारणों से या सम्पर्क के कारण लोगों में इस भाषा का प्रचलन हो गया। यह व्यवहार की भाषा बन गयी।

संत, महात्मा, विद्वान, विचारकों ने अपने विचारों एवं भावों की सार्वदेशिक अभिव्यक्ति के लिए इसी भाषा का और देवनागरी लिपि का प्रयोग किया। महाराष्ट्र के

मराठीभाषी संत तथा गुजरात के गुजरातीभाषी संतों ने अपनी भक्ति को इसी भाषा में वाणी दी। संत, सिद्ध और गोरखपंथियों के काल से लेकर आज तक सभी ने इसी भाषा का अपने व्यवहार में प्रयोग किया है। धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और राष्ट्रीय कारणों के अलावा और एक बात माननी पड़ेगी कि हिन्दी भाषा में कुछ ऐसे गुण हैं, जिनके कारण इसका सामान्य तौर पर अपनाया जाना स्वाभाविक हुआ। भाषा के विचार से अगर गौर किया जाय तो हम पायेंगे कि हिन्दी विश्लेषणात्मक भाषा है। व्याकरण की दृष्टि से यह सरल है। इसके बोलने वालों की संख्या बहुत बड़ी होने के कारण देश के भिन्न-भिन्न भागों के साथ सम्पर्क स्थापित होने से स्वतः इसका प्रसार बढ़ता रहा है। आधुनिक काल में सिनेमा, दूरदर्शन, समाचारपत्र, सभा-सम्मेलन, व्याख्यान-चर्चा आदि के कारण इसका प्रचार हुआ। व्यापार करने में अग्रणी मारवाड़ी देश के सभी भागों में फैले बसे हुए हैं। उनकी मुख्य वृत्ति व्यापार है इसलिए वे आम जनता से सम्पर्क बढ़ाने में रुचि रखते रहे हैं, जिसके कारण हिन्दी भाषा के शब्द सर्वत्र फैलते गये।

भारत जैसे बहुभाषी राष्ट्र के लिए एक सार्वदेशिक भाषा की एवं उसके प्रचार की नितान्त आवश्यकता है। ऐसा दूरदर्शी विचार देश के चुनिन्दा नेताओं ने व्यक्त किया। द्रविड़ प्रदेशों में प्रचार शुरू करने की योजना महात्मा गाँधी जी की व्यावहारिक दूरदर्शिता का साक्षात् दर्शन है। सरकारी और गैरसरकारी संस्थाओं के सहयोग से हिन्दी की पढ़ाई एवं प्रचार-प्रसार-कार्य सम्पन्न हो सका। लाखों लोगों ने हिन्दी सीखी, हजारों ने प्रचार किया, अनेक संस्थाएँ स्थापित हुईं। कई व्यक्ति सहयोग, सहभाव, सामंजस्य और संगठन स्थिर करने में लगे रहे। भारत की जनता हिन्दी को संघभाषा बनाना चाहती थी। प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक काल तक हिन्दी भाषा को सामान्य तौर पर सार्वदेशिक व्यवहार होने के कारण भाषा-सम्बन्धी अनुकूलता रही और परिणामतः हम एक राष्ट्रभाषा को स्वीकार करने में सफल हुए। स्वतन्त्रता आन्दोलन का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष समर्थन करने वाले असंख्य नेताओं, क्रान्तिकारियों, बलिदानियों, लेखकों, कवियों, पत्रकारों ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने में भरपूर योगदान दिया। इन सब प्रयत्नों के पीछे गाँधी जी का यह संकल्प जून, 1931 के 'यंग इंडिया' में प्रकाशित हुआ—"अगर यह स्वराज्य करोड़ों भूखों मरने वालों का, करोड़ों निरक्षरों का, निराहार बहनों व दलितों व अन्त्यजों का हो और इन सबके लिए हिन्दी एकमात्र राष्ट्रभाषा हो सकती है।" गाँधी जी की इस भावना को ओजस्वी वक्ता और विद्वान महाराष्ट्र के लोकमान्य तिलक ने स्वीकार किया। कानपुर की एक सभा में तिलक ने कहा था—"हिन्दी ही भारत की राष्ट्रभाषा हो सकती है और मैं हिन्दी समझ सकता हूँ और टूटी-फूटी बोल भी सकता हूँ।" उन्होंने अपने अखबार 'केसरी' में एक स्तम्भ चलाया। इस तरह लोकमान्य तिलक जी ने अपने चतुर्मुखी कार्यक्रम का एक सूत्र 'स्वभाषा शिक्षा' अर्थात् हिन्दी शिक्षा को आवश्यक माना। तमिलनाडु के सी० राजगोपालाचारी, तमिलनाडु के तत्कालीन मुख्यमंत्री थे, उन्होंने तमिलनाडु प्रान्त के सभी विद्यालयों में हिन्दी शिक्षण अनिवार्य कर दिया। उससे स्पष्ट होता है कि स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान हिन्दी का राष्ट्रभाषा के रूप में बड़ी तेजी से विकास हुआ। 1947 तक आते-आते हिन्दी राष्ट्रभाषा

के रूप में प्रतिष्ठित हुई। वैसे तो राष्ट्र की सभी भाषाएं राष्ट्रभाषाएं हैं किन्तु राष्ट्र की जनता जब स्थानीय एवं तात्कालिक हितों एवं पूर्वग्रहों से ऊपर उठकर अपने राष्ट्र की कई भाषाओं में से किसी एक भाषा को विशेष प्रयोजनों के लिए उसे राष्ट्रीय अस्मिता एवं गौरव गरिमा का एक आवश्यक उपादान समझने लगती है, तो वही राष्ट्रभाषा बन जाती है। किसी एक भाषा को जब हम राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करते हैं तो उसे एक अतिरिक्त सम्मान देने का बोध तो होता ही है, पर इसके साथ देश की अन्य की उपेक्षा करने या उसे नीचा दिखाने का कोई भाव नहीं होता। राष्ट्रभाषा राष्ट्रीय एकता एवं अन्तर्प्रान्तीय संवाद-सम्पर्क की आवश्यकता की उपज होती है। संवाद-सम्पर्क के दो पक्ष होते हैं—(क) जनता से जनता के बीच संवाद एवं (ख) जनता से सरकार के बीच संवाद।

आरम्भ से ही हिन्दी राष्ट्रभाषा के उपर्युक्त दोनो दायित्वों का निर्वाह करती रही है। जनता और सरकार के बीच संवाद-स्थापना के उद्देश्य से जब फारसी या अँगरेजी भाषा के माध्यम से असुविधा होने लगी तो सरकार ने फोर्ट विलियम कॉलेज, कलकत्ता में हिन्दुस्तानी विभाग खोलकर अधिकारियों के लिए हिन्दी सिखाने की व्यवस्था की। यहाँ से हिन्दी पढ़े व सीखे हुए अधिकारियों ने भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में उसका प्रत्यक्ष लाभ देखकर मुक्तकंठ हिन्दी की सराहना की। सन् 1806 में सी. टी. मेटकॉफ ने फोर्टविलियम कॉलेज के हिन्दुस्तानी विभाग के अध्यक्ष जॉन गिलक्राइस्ट को पत्र लिखा था–"भारत के जिस भाग में भी मुझे काम करना पड़ा है, कलकत्ते से लाहौर तक, कुमाऊँ के पहाड़ों से लेकर नर्मदा तक ··· मैंने इस भाषा का आम व्यवहार देखा है, जिसकी शिक्षा आपने मुझे दी ··· हर कोई जानता है कि जिस विशाल प्रदेश का मैंने जिक्र किया है उसमें बहुत-सी भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोली जाती हैं ··· लेकिन हिन्दुस्तानी एक ऐसी जबान है जो आमतौर से उपयोगी होती है ···।" हिन्दी की सर्वव्यापकता ने ही अँगरेज अधिकारियों का ध्यान हिन्दी की ओर खींचा। 12 अगस्त, 1810 को लेफ्टिनेंट टौमस रोबक ने मद्रास से ईस्ट इंडिया कम्पनी के डायरेक्टरों की कॉलेज कमिटी को एक पत्र लिखा था, जिसमें उन्होंने स्वीकार किया था कि उन्हें हिन्दुस्तानी के ज्ञान से बहुत लाभ हुआ है। इसी पत्र में उसने यह अनुरोध किया था कि उसे हर्टफोर्ड स्थित कॉलेज के हिन्दी-विभाग में काम दिया जाय, जिससे कि भारत आने से पहले ही अंगरेज कुछ हिन्दुस्तानी सीख लें। उसने यह भी लिखा था कि जैसे इंगलैंड जाने वाले को लेटिन या फ्रांसीसी के बदले अँगरेजी सीखनी चाहिए, वैसे ही भारत आने-जाने को अरबी, फारसी या संस्कृत के बदले हिन्दुस्तानी सीखनी चाहिए। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सर्वव्यापकता के साथ-साथ जनसम्पर्क में हिन्दी की तात्कालिक उपयोगिता को अँगरेज अधिकारियों ने समझ लिया था और इसी ने हिन्दी-व्यवहार के लिए उन्हें प्रेरित किया। टौमस रोबक के अनुसार : हिन्दुस्तानी के प्रयोग के चार क्षेत्र हैं : (क) हिन्दुस्तानी में सभी राजनीतिक मसलों पर विचार किया जाता है और अंत में इससे फारसी में अनुवाद किया जाता है। (ख) देशी आन्दोलनों की सामान्य भाषा हिन्दुस्तानी है, यद्यपि कभी-कभी फारसी का भी प्रयोग किया जाता है। (ग) देशी सेना की आम जबान हिन्दुस्तानी है। (घ) मालगुजारी का सारा काम हिन्दुस्तानी में होता है।

1816 में विलियम केरी ने लिखा कि हिन्दी किसी एक प्रदेश की भाषा नहीं, बल्कि देश में सर्वत्र बोली जाने वाली भाषा है। उनकी यह राय इसलिए बनी थी कि अँगरेजों को भारत के किसी कोने में जो भी मुसलमान नौकर मिलते थे वे सभी हिन्दी बोलते थे। ग्रियर्सन ने हिन्दी की चर्चा में कहा है कि आम बोलचाल की भाषा हिन्दी है, जिसे प्रत्येक गाँव में थोड़े-बहुत लोग समझ लेते हैं। हिन्दी की व्यावहारिक उपयोगिता, देशव्यापी प्रचार एवं प्रयोग के लचीलेपन की वजह से हिन्दी अँगरेजी की प्रिय बनी, उनकी कलम एवं जुबान पर चढ़ी। इसलिए कम्पनी के सिक्कों पर हिन्दी अक्षर एवं अंक अंकित होने लगे। सरकार के फरमान भी हिन्दुस्तानी में छपते थे। उस समय हिन्दी और उर्दू को लेकर कोई विवाद भी नहीं था। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि (i) हिन्दी एक आम फहम जबान थी जो देश के एक कोने से दूसरे कोने तक बोली और समझी जाती थी। (ii) यह सरकारी दफ्तर की भाषा थी जो फारसी लिपि में लिखी जाती थी। (iii) आरम्भ से ही अँगरेज विद्वान हिन्दी और उर्दू को एक ही भाषा मानते थे जो दो लिपियों में लिखी जाती थी। (iv) अँगरेजों ने हिन्दी को प्रयोग में लाकर संघभाषा के रूप में हिन्दी की सम्भावनाओं की ओर हमारे साहित्यकारों एवं राष्ट्रीय नेताओं का ध्यान आकृष्ट किया। गाँधी जी हिन्दी के प्रश्न को स्वराज्य का प्रश्न मानते थे। उन्होंने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में सामने रखकर भाषा समस्या पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया। उनकी भाषा-नीति की मुख्य शैली थी :

(i) भाषा समस्या का समाधान जनता के हित को ध्यान में रखकर किया जाय।

(ii) राष्ट्रभाषा आत्मसम्मान की अभिव्यक्ति का माध्यम है, अतः राष्ट्रीय आत्मसम्मान की रक्षा के लिए अँगरेजी का प्रभुत्व खत्म किया जाना चाहिए।

(iii) भारतीय जनता की असली राष्ट्रभाषा हिन्दी ही हो सकती है।

बापू के स्वदेशी आन्दोलन ने राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी के स्वीकार एवं प्रयोग को सार्वजनिक बनाया। अँगरेजी शासन के विरोध के क्रम में ही विदेशी वस्तुओं एवं विदेशी भाषा अँगरेज़ी का विरोध मुखर हुआ। अँगरेज़ी के विकल्प के रूप में हिन्दी सामने आयी। बापू ने प्रयासपूर्वक पहले हिन्दी सीखी एवं इसे उन्होंने सिद्धान्त व प्रयोग दोनों स्तरों पर अपनाया। 1927 में उन्होंने लिखा—"वास्तव में वे अंग्रेजी बोलने वाले नेता हैं, जो आम जनता में हमारा काम जल्दी आगे नहीं बढ़ने देते। वे हिन्दी सीखने से इन्कार करते हैं, जबकि हिन्दी द्रविड़ प्रदेश में भी तीन महीने के अन्दर सीखी जा सकती है।" गाँधीजी जनता की बात जनता की भाषा में करना चाहते थे। उनके प्रयास से ही कानपुर अधिवेशन में 1925 में काँग्रेस ने यह प्रस्ताव पारित किया था कि (i) अखिल भारतीय स्तर पर जहाँ तक संभव हो सके काँग्रेस की कार्यवाही हिन्दी में चलायी जाय। (ii) अपने सभी कार्यों में प्रादेशिक काँग्रेस कमिटियाँ प्रादेशिक भाषाओं अथवा हिन्दुस्तानी का प्रयोग करें। गाँधी जी ने अँगरेजी के व्यवहार को राजनीतिक-सांस्कृतिक गुलामी का परिणाम माना। हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में सुदृढ़ करने के लिए उन्होंने वर्धा एवं चेन्नई में राष्ट्रभाषा प्रचार सभाएँ

स्थापित कीं। उन्हीं की प्रेरणा से विद्यापीठों एवं हिन्दी साहित्य-सम्मेलनों की ओर से हिन्दी में परीक्षाएँ आयोजित की गयीं। गाँधी जी ने हिन्दी को अपनाने का एक माहौल बना दिया था। इस कारण कई राष्ट्रीय नेतागण तन-मन से हिन्दी की सेवा में जुट गये। कन्हैया लाल माणिक लाल मुंशी, काका कालेलकर एवं विनोबा भावे आदि देश की प्रमुख हस्तियाँ राष्ट्रीय एकीकरण के लिए हिन्दी को परम आवश्यक मानते थे। चौथे दशक में हिन्दी राष्ट्रभाषा के रूप में आम सहमति प्राप्त कर चुकी थी। शताब्दियों तक दक्षिण की भाषाएँ संस्कृत से प्रभावित रही हैं। दक्षिण के तीर्थ-स्थलों की आम-व्यवहार की भाषा हिन्दी रही है। व्यापार, यातायात, शिक्षा एवं मनोरंजन के साधनों के कारण दक्षिण भारतीयों के लिए हिन्दी अपरिचित नहीं रही है। 1927 में सी० राजगोपालाचारी ने दक्षिण वालों को हिन्दी सीखने की सलाह दी थी। उन्होंने कहा था–"हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा तो है ही, यही जनतन्त्रात्मक भारत में राजभाषा भी होगी।" रंगनाथ रामचन्द्र दिवाकर ने कहा था–"जो राष्ट्रप्रेमी हैं उन्हें राष्ट्रभाषा-प्रेमी होना ही चाहिए।" इस प्रकार कहा जा सकता है कि (i) ब्रिटिश साम्राज्यवादी हिन्दी को आम आदमी की भाषा के रूप में स्वीकार कर चुके थे। (ii) आरम्भ में सरकार की नीति हिन्दी के पक्ष में थी, पर बाद में उन लोगों ने उर्दू को बीच में लाकर फूट डालना शुरू किया। (iii) समाज सुधारकों एवं पत्रकारों ने राष्ट्रीय पुनर्जागरण के लिए माध्यम के रूप में हिन्दी को स्वीकार किया। (iv) काँग्रेस ने राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान जनता से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए हिन्दी को अंगीकार किया एवं उसे राष्ट्रभाषा की गरिमा प्रदान की। राष्ट्रभाषा की प्रमुख विशेषताएँ ये हैं :

(i) यह राष्ट्र के बहुसंख्यक लोगों द्वारा बोली और समझी जाती है।(ii) उसका साहित्य ज्ञान की विभिन्न शाखाओं में विस्तृत एवं उच्च कोटि का हो। (iii) उसका शब्द-भाण्डार तथा विचार-क्षेत्र व्यापक हो। (iv) उसका व्याकरण सरल हो। (v) उसमें आवश्यकतानुसार देशी-विदेशी भाषाओं के शब्दों को सरलता से आत्मसात् करने की शक्ति हो। (vi) उसकी लिपि सरल हो। (vii) उसके साहित्य में राष्ट्रीय संस्कृति की आत्मा मुखरित हो। (viii) उसमें भावात्मक एकता स्थापित करने की पूर्ण क्षमता हो। हिन्दी में इन्हीं विशेषताओं के कारण गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर, सर गुरुदास बनर्जी, रमेशचन्द्र दत्त, राजेन्द्रलाल मित्र अनेक बंगाली विद्वानों, काका कालेलकर, कन्हैया लाल माणिकलाल मुंशी, मगन भाई देसाई आदि गुजराती विद्वानों, लोकमान्य तिलक, भंडारकर, विनायक वैद्य–जैसे महाराष्ट्रीय नरश्रेष्ठों के साथ-साथ मो० सच्चनारायण, एस. निजलिंगप्पा, अनन्तशयनम् अयंगार, रंगनाथ रामचन्द्र दिवाकर, पी. नारायण, के. सी. सारंगमठ, के. सी. मानप्पा, एस. वेंकटेश्वरन, प्रो० एन. नागप्पा आदि देशभर के विभिन्न भाषा-भाषी उदार राजहितैषियों ने स्पष्ट शब्दों में ऐसा विचार प्रकट किया कि हिन्दी हर दृष्टि से भारत की राष्ट्रभाषा बनने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है। ग्रियर्सन, पिन्कॉट, क्रस्ट, मैकमर्डो आदि ब्रिटिश प्रशासकों एवं चिन्तकों ने राजनीतिक पूर्वग्रहों से ऊपर उठकर प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों के आधार पर इस विषय पर विचार किया है कि भारत में एक भाषा (हिन्दी) ही राष्ट्रभाषा का स्थान ले सकती

है। यही एक भाषा है, जिसमें दो विभिन्न प्रान्तों के लोग आपस में बातचीत कर सकते हैं। यह भारत में सर्वत्र समझी जाती है, क्योंकि इसका व्याकरण भारत की अधिकांश भाषाओं के समान है और इसका शब्दकोश सबकी सम्मिलित सम्पत्ति है।